Anusandhanvallari
Vol 2026, No.1
ISSN 2229-3388

पूना समझौता : प्रावधान एंव चुनौतियाँ

अनुराग गौतम[1]**, डॉ. सत्य प्रकाश राय**[2]
शोधार्थी[1] इतिहास विभाग, बी आर अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर बिहार
सहायक आचार्य[2] इतिहास विभाग, बी आर अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर बिहार

शोध सारांश

1909 और 1919 के अधिनियमों के माध्यम से मुसलमानों और सिखों सहित कई समुदायों को अलग मतदाता सूची प्रदान की गई। राष्ट्रवादी इतिहासकारों के अनुसार वास्तव में ब्रिटिश शासन का उद्देश्य हिंदुओं मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यक समूहों आदि में फूट डालकर भारतीय एकता को कमजोर करना था। दलित समुदायों का राजनीतिक उभार 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में तेज हुआ। डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि दलित समुदाय भारत का वास्तविक अल्पसंख्यक वर्ग है जिसे पृथक निर्वाचन मंडल और राजनीतिक संरक्षण की आवश्यकता है। 1920 के बाद अंग्रेजों ने दलितों के प्रति अपनी नीति बदली क्योंकि उन्हें यह समझ आने लगा था कि गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस को व्यापक जनसमर्थन मिल रहा था। इस पृष्ठभूमि में दलित नेताओं को गोलमेज सम्मेलनों में आमंत्रित किया गया। प्रथम सम्मेलन में अम्बेडकर और हिंदू महासभा के नेताओं ने दलित अधिकारों पर विचार–विमर्श किया। 1931 में शुरू हुए दूसरे गोलमेज सम्मेलन में महात्मा गांधी ने कांग्रेस की ओर से प्रतिनिधित्व किया और दलितों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल का कड़ा विरोध किया। उनका मत था कि ऐसी व्यवस्था हिंदू समाज को विभाजित कर देगी। उन्होंने कहा कि कांग्रेस सभी वर्गों की प्रतिनिधि है और किसी भी जाति को विशेष राजनीतिक संरक्षण देना वे स्वीकार नहीं करेंगे। अम्बेडकर और गांधी के बीच मतभेद बढ़ने पर ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्ज़े मैकडोनाल्ड ने 17 अगस्त 1932 को ″साम्प्रदायिक निर्णय″ (Communal Award) घोषित किया। इसमें दलितों को 20 वर्षों तक पृथक निर्वाचन मंडल और दोहरे वोट का अधिकार दिया गया। हालांकि यह व्यवस्था अम्बेडकर के लिए ″अनमोल विशेषाधिकार″ थी जबकि गांधी ने इसे अंग्रेजों की ″फूट डालो और राज करो″ नीति बताया और इसके विरोध में 20 सितंबर 1932 से आमरण अनशन की घोषणा कर दी। हिंदू एवं दलित नेताओं के बीच लगातार वार्ताओं के बाद अंततः 24 सितंबर 1932 को ″पूना पैक्ट″ के बाद अम्बेडकर ने पृथक निर्वाचन मंडल की मांग छोड़ने पर सहमति दे दी। पूना समझौता भारतीय इतिहास की एक निर्णायक घटना थी जिससे दलितों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हुआ और भविष्य में सरकारी सेवाओं तथा अन्य क्षेत्रों में आरक्षण की व्यवस्था प्रारंभ हुई। यह समझौता उतना ही महत्वपूर्ण माना जाता है जितना लखनऊ समझौता मुसलमानों के लिए था। इस लेख के माध्यम से गांधी व अंबेडकर के मध्य संपन्न पूना समझौता जो कई महत्वपूर्ण बदलाव और द्वंद के पश्चात पूर्ण हुआ। यह लेख इस विषय में तत्कालीन आवश्यकता चुनौतियों तथा इसके समाधान को जानने का प्रयास है।

विशिष्ट शब्द

जातीय ध्रुवीकरण पृथक निर्वाचन मंडल दलित साम्प्रदायिक आधार अछूत मुस्लिम संगठन जनगणना आरक्षित सीट

Anusandhanvallari
Vol 2026, No.1
ISSN 2229-3388

बंगाल विभाजन के उपरांत भारतीय जनमानस के भीतर ब्रिटिश नीतियों के विरुद्ध व्यापक असंतोष की लहर फैल चुकी थी परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति का जातिगत समूहों में ध्रुवीकरण होने लगा। अब भारत में साम्प्रदायिकता को आधार बनाकर शासन करने की नीतियों पर जोर दिया जाने का प्रयास प्रारंभ हुआ। अंग्रेजों द्वारा विभिन्न समुदायों को पृथक निर्वाचन मंडल देने की नीति ने इस विभाजन को और तीव्र कर दिया। विशेषकर जब ब्रिटिश शासन के द्वारा विभिन्न समुदायों को पृथक निर्वाचन मण्डल प्रदान किया जाने लगा तब दलित वर्गों में भी राजनैतिक महत्वाकांक्षा जोर मारने लगी और उनका नेतृत्व अपनी स्थितियों को बदलने के लिए प्रयासरत हो गया। अंग्रेजों ने विभिन्न समुदायों को राजनैतिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने लिए समय–समय पर राजनीतिक सुधारों को आगे बढ़ाया। कई राष्ट्रवादी इतिहासकारों का मानना है कि इन सुधारों का मूल उद्देश्य राष्ट्रीय आंदोलन में फूट डालना और हिंदू, मुस्लिम, दलित आदि साम्प्रदायिकता को भड़का कर भारतीय की एकता को तोड़ना और आपसे में उलझाए रखना था। इसी उदेश्य से उन्होंने निर्वार्चित क्षेत्रों का बंटवारा जातीय व साम्प्रदायिक आधार पर किया।[1]

विशेषतः मुसलमानों के लिए सुरक्षित सीटें बनाई गई जिससे उनकी स्थिति को सशक्त करने में जहाँ मुसलमान केवल मुस्लिम उम्मीदवारों की हीं वोट दे सकते थे। यह जताने की कोशिश की गई कि हिन्दुओ और मुसलमानों के राजनीतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक हित परस्पर मेल नहीं खाते है।[2] औपनिवेशिक भारत में पृथक निर्वाचन मंडल की राजनीति से हिंदू एवं मुसलमानों में अप्रत्याशित दूरी बढ़ी। 1909 एवं 1919 के भारत सरकार अधिनियमों में इस नीति की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। 1909 के मार्ले–मिंटो सुधार के बाद सरकार ने पहली बार साम्प्रदायिक आधार पर पृथक मतदाता मण्डल बनाए। जिससे साम्प्रदायिक राजनीति के फैलाव को एक मजबूत आधार मिला। इस पद्धति के अंतर्गत मुसलमान (बाद में सिख तथा अन्य) मतदाताओं कि लिए अलग निर्वाचन मंडल बना दिए गए। भारत में राजनीतिक असंतोष को कम करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1919 के अधिनियम के अनुसार किये गये "राजनीतिक सुधारों" का पुनर्मूल्यांकन करने का निर्णय लिया। इसके लिए एक संविधान सुधार आयोग की नियुक्ति की गई चूंकि सर जॉन साइमन इसके अध्यक्ष बनाए गए थे इस कारण इसका नाम "साइमन कमीशन" के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भारत के अछूत हिन्दुनों से अलग हैं यह विचार सबसे पहले दलित नेतृत्व ने नहीं अपितु कुछ मुस्लिम संगठनों ने पेश की थी। उन्होंने मांग की थी कि देश की राजनीतिक संस्थानों में हिन्दुओं के प्रतिनिधित्व का अनुपात सभी हिन्दुओ की सामूहिक संख्या के अनुसार निश्चित न किया जाए वरन् सवर्ण व दलित हिन्दुओ की संख्या के अनुरूप ही अलग अलग निश्चित होना चाहिए क्योंकि सवर्ण हिन्दू निम्न जातियों को अपने धर्म में किसी भी प्रकार से समानाधिकार प्रदान नहीं करते है।[3]

दरअसल ऐसे मुस्लिम संगठनों ने हिन्दू बहुसंख्या को अपने लिए बहुत बड़ा खतरा माना था और मांग की थी कि अछुतो की गिनती हिन्दुओं के साथ न की जाए। उन्हें यह आशंका थी कि दलित समुदाय को अपने में समाहित कर हिन्दू अधिक शक्तिशाली समूह बन जाएंगे। 1911 की जनगणना से अछूतों को आबादी के एक अलग हिस्से के रूप में दर्शाने की शुरुआत हुई।[4] डॉ. अम्बेडकर जो उस समय अछूतों के अधिकार की बात करने वाले तथा दलितों के कद्दावर नेता बन चुके थे का मानना था कि वास्तव में अछूतों और हिन्दुओं का आपस में कोई खास सामाजिक सम्बंध नहीं है। दरअसल हिन्दू समाज में दलितों को सभी प्रकार के मानवाधिकारों से वंचित रखा गया था।

वे जीवन के लगभग हर क्षेत्र सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक से बहिष्कृत थे।[5] इसलिए उन्हें राजनीतिक दृष्टि से भी एक अलग संप्रदाय समझा जाना चाहिए। उनका मत था कि विधायिकाओ में इस वर्ग के एक दो लोगों की नामजदगी की प्रणाली समाप्त की जानी चाहिए। उन्होने आरंभिक दौर में व्यस्क मताधिकार के साथ अछूतों हेतू स्थान सुरक्षित करने की मांग की और कहा कि ऐसा संभव न हो तो उनके लिए पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था हो।[6] डॉ अम्बेडकर की स्पष्ट धारणा थी कि "राजनैतिक संरक्षण" धार्मिक आधार पर न होकर "सामाजिक आधार" पर होना चाहिए। उनके अनुसार अस्पृश्य समुदाय भारत का एकमात्र ऐसा समुदाय था जिसे न केवल पृथक राजनैतिक संरक्षण की आवश्यकता थी अपितु पृथक निर्वाचन मंडल की भी आवश्यकता थी।

स्पष्ट दृष्टव्य है कि दलित वर्ग हेतु पृथक निर्वाचन मंडल की मांग के प्रति उनका दृष्टिकोण साम्प्रदायिक न होकर सामाजिक था। भारतीय जनसंख्या के पांचवे भाग अछूतों को भी राजनितिक रूप से अब महत्वपूर्ण समझा जाने लगा था। अछूतों के समूह में पंचम, आदि, आंध्र द डिप्रेस्ड क्लास मिशन सोसायटी, द डिप्रेस्ड इंडियन एसोसिएशन, नामशूद्र और आदि द्रविड़ जैसी संस्थाएं अब भारतीय राजनीति में अपनी पहचान स्थापित करने में सफल हो रहीं थीं।[7]

उपरोक्त राजनीतिक और सामाजिक संगठनों के विकास ने दलितों के बीच राजनैतिक महत्वाकांक्षा को तेज कर दिया। विशेष तौर पर गाँधी जो उन दिनों भारतीय राजनीति में महात्मा के तौर पर उभर रहे थें ने कांग्रेस की समाज सुधार के प्रति असंबद्धता की बरसों पुरानी परंपरा को बदल दिया था।[8] दबे कुचले तथा समाज से उपेक्षित अछूतों के प्रति गाँधी की करुणा भरी पहल तथा इसके फलस्वुरूप सामाजिक सुधार के मुद्दों के प्रति कॉंग्रेस के रुख में सकारात्मक बदलाव ने दलित वर्ग में राजनीतिक हलचल को और बढ़ा दिया था।

यह बात विचार योग्य हैं कि औपनिवेशिक राज की अछूतों के प्रति नीति 1920 के बाद अचानक हीं बदल गई। इससे पहले उन्होनें अछूतों की समस्याओं और स्थिति पर कोई खास ध्यान नहीं दिया था। इसका कारण सम्भवतः महात्मा गांधी के नेतृत्व में कॉंग्रेस की बढ़ती लोकप्रियता थी। ऐसे में अंग्रेजों ने पहले तो मुसलमानों एवं सिखों और फिर दलितों का सहयोग लेना प्रारंभ किया। ताकि वे कॉंग्रेस को इन समूहों के सहयोग से आपस में उलझा सके। इस प्रकार दलित वर्ग के लोगों के भीतर राजनैतिक बेचैनी निरंतर बढती जा रही थी और वे अपने मांगों को मुख्य रूप से रखने लगे थे। ऐसे में विवश होकर ब्रिटिश शासन को दलित वर्ग की समस्या की ओर ध्यान देना पड़ा। दलित नेतृत्व को ब्रिटिश राज की ओर से "गोलमेज सम्मेलन" में भाग लेने हेतु आमंत्रण मिलना इसी बात का हीं परिणाम था।[9]

प्रथम गोलमेज सम्मेलन की विशेषता यह रही कि हिंदू महासभा के नेता डॉ० बी० एस० मुंजे और डॉ अम्बेडकर ने अस्पृश्यों के अधिकारों को लेकर परस्पर विचार विमर्श किया और दोनों के निष्कर्ष लगभग एक समान रहे। इस प्रकार गोलमेज सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन दलित वर्ग के हितों के दृष्टिकोण से सफल रहा। वहीं दूसरा गोलमेज सम्मेलन 7 सितम्बर 1931 को शुरू हुआ जिसकी अगुवाई कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी कर रहें थें। गोलमेज परिषद की बैठक में गाँधी ने भाषण देते हुए कहा था कॉंग्रेस किसी एक जाति धर्म या वर्ग के लोगों की प्रतिनिधि न हो कर सब धर्मों की जातियों की एकमेव प्रतिनीधि है।[10]

17 सितंबर 1931 को "फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी" की दूसरी बैठक में दलित नेताओं की मांगों का स्पष्ट रूप से विरोध करते हुए गांधी ने कहा "कांग्रेस ने हिंदू– मुस्लिम सीख विवाद के विशेष समाधान के लिए सैद्धान्तिक तौर पर सहमति दी है। लेकिन कांग्रेस इस सिद्धांत को किसी अन्य रूप में आगे नहीं बढाएगी। वे (दलितों के हित) कांग्रेस को उतने ही प्रिय है जितने भारत में किसी अन्य समुह या किसी अन्य व्यक्ति के हित है। इसलिए मैं किसी भी भावी विशेष प्रतिनिधित्व का सबसे अधिक दृढता से विरोध करूंगा"।[11] महात्मा गांधी ने गोलमेज सम्मेलन के भीतर और बाहर अपने भाषणों और साक्षात्कारों में दलित वर्गो की मांगों के खिलाफ कई तरह के तर्क दिए। उन्होंने अपनी विशिष्ट शैली में दलितों की मांगों का विरोध करते हुए कहा : "अगर मैं पृथक प्रतिनिधित्व की इस घिनौनी योजना के लिए अपनी सहमती देता हूँ तो मैं उनके (दलितों के) जन्मसिद्ध अधिकारों को बेच दूँगा"।[12] परन्तु डॉ अम्बेडकर अपने दावे पर कायम रहे। गांधी और दलित नेतृत्व के बीच बढते हुए विवाद का समाधान निकालने के लिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड ने सुझाव दिया कि सभी अल्पसंख्यक किसी पारस्परिक समझौते पर पहुंचने का प्रयास करें। डॉ अम्बेडकर के अनुसार वास्तविकता यह थी कि दलित समुदाय भारत का वास्तविक अल्पसंख्यक समुदाय था जिसे संरक्षण की आवश्यकता सर्वाधिक थी।

लेकिन गांधी जी उनके तर्कों को सुनने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होनें इस विषय के विरुद्ध किसी भी हद तक जाने की बात करते हुए आवेश में आकर यह घोषणा तक कर डाली कि मैं अपनी जान देकर भी इसका विरोध करूंगा। उनकी इस घोषणा से सम्मेलन में सर्वसम्मत समाधान निकलने की कोई उम्मीद नहीं बची थी। इसलिए प्रधानमंत्री रैम्ज़े मैकडोनाल्ड ने अल्पसंख्यक समिति की कार्यवाही को स्थगित कर दिया।

गांधी कि इस घोषणा के बाद साम्प्रदायिक समस्या के समाधान के प्रयासों को भारी धक्का लगा और दूसरा गोलमेज सम्मेलन विफलता के कगार पर पहुंच गया। ऐसे में केवल एक ही विकल्प शेष दिखाई पड़ रहा था कि मामले की मध्यस्थता के लिए ब्रिटिश प्रधानमंत्री को सौंप दिया जाए। 17 अगस्त 1932 को रैम्जे मैकडोनल्ड ने आखिकार अपने अवार्ड की घोषणा की जिसे भारतीय इतिहास के अंतर्गत लोकप्रिय रूप से "साम्प्रदायिक निर्णय" के नाम से जाना जाता है। अछूतों को एक ऐसे अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में मान्यता दी गई जो पहले बीस वर्षों के लिए अलग निर्वाचन मंडल के हकदार थे और सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान करने और चुनाव लडने का भी अधिकार रखते थे। मैकडोनाल्ड अवार्ड में दलित वर्गों को प्रान्तों में कुल यानि 1483 सीटों में से 71 सीटें मिली जबकि दलित नेताओं नें गोलमेज सम्मेलन में 17 % सीटों की मांग की गई थी।[13]

"मैंक्डोनाल्ड अवार्ड के अंतर्गत प्रान्तीय विधायिकाओं में दलित वर्ग को प्रदान की गई सीटें [14]

प्रान्त	सामान्य सीटें	दलित सीट
मद्रास	134	18
बंबई (सिंध सहित)	97	10
बंगाल	80	0
संयुक्त प्रांत	132	12
पंजाब	43	0
बिहार व उड़ीसा	99	7
मध्य प्रांत बरार सहित	77	10
असम	44	4
उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत	9	0
बंबई	109	10
सिंध	19	0
कुल योग	843	71

डॉ अम्बेडकर एंव अन्य दलित नेताओं का मानना था कि मैकडोनाल्ड अवार्ड अपनी सीमाओं के बावजूद दलित वर्ग के लिए बहुमूल्य उपहार था। इस अवार्ड द्वारा पहली बार उनको पृथक राजनैतिक अधिकार एंव "दोहरा वोट" प्राप्त हुए।

विशेषकर दूसरा लाभ अम्बेडकर के अनुसार एक "अनमोल विशेषाधिकार" था क्योंकि अब उनके निर्वाचन क्षेत्र में कोई भी "सर्वण हिंदू" उम्मीदवार उनकी उपेक्षा नही कर सकता था उन्हे उनके वोटों पर आश्रित बना दिया गया था। वहीं दूसरी ओर गांधी को अवार्ड के इन प्रावधानों से घोर आपत्ति थी। राष्ट्रवादी इतिहासकारों के अनुसार गांधी इसमें अंग्रेजों की फुट डालो और राज करो की नीति को देखते थे।

सम्भवतः गांधी के विरोध का कारण उनकी दूरदृष्टि थी जो भविष्य में भारतीय राजनीति को विषयांतर करने वाले चाल को समझ चुका था। विषय की गंभीरता को देखते हुए गांधी ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैम्जे मैकडोनाल्ड को पत्र लिखकर विरोध करते हुए लिखा : "मुझे आपके फैसले का विरोध अपने जीवन को दाव पर लगाकर करना है। नमक और सोडा के साथ पानी को छोड़कर किसी भी तरह के भोजन से परहेज करते हुए एक सतत आमरण अनशन की घोषणा करके मैं ऐसा कर सकता हूँ। प्रस्तावित अनशन 20 सितंबर की दोपहर से सामान्य रूप से शुरू हो जायेगा और तब तक जारी रहेगा जबतक उक्त निर्णय को इस बीच संशोधित नहीं कर दिया जाता।"[15]

ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने बड़ी चतुराई से इस विवाद से अपना पल्ला यह कहकर झाड़ लिया कि संबंधित पक्षों में आपसी सहमति हो जाने पर वे ऐसे किसी भी समझौते को स्वीकार कर लेंगें। अतः यह स्पष्ट हो गया कि अब विवाद मूल रूप से गांधी और डॉ अम्बेडकर के बीच आकर ठहर गया है। 13 सितंबर 1932 की शुरुआत में गांधी के प्रस्तावित उपवास की खबर कांग्रेस के भीतर और बाहर उनके कई मित्रों को व अखबारों को दी गई। यह स्थिति देश एंव डॉ अम्बेडकर दोनो के लिए बड़ी चिंता का विषय अब बन गया था। उन्होने महात्मा गांधी के बयानों को "राजनीतिक स्टंट" बताया।[16] फिर भी वे ऐसे सभी प्रस्तावों पर विचार करने को तैयार थे जो अछूतों की न्यायसंगत मांगो को खतरे में नहीं डालते हो।

19 सितंबर 1932 को पं०मदन मोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिंदू नेताओं का बम्बई में सम्मेलन हुआ। कमला नेहरू और दलित नेताओं जैसे एम० सी० राजा, पी बालू और अम्बेडकर ने भाग लिया। अम्बेडकर ने सम्मेलन में बोलते हुए कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को महात्मा गांधी के अमूल्य जीवन बचाने का प्रयास करना चाहिए। अपने पक्ष को बैठक में रखते हुए अम्बेडकर ने कहा "इस प्रकरण में खलनायक होना मेरे भाग्य में लिखा है परंतु जिसे मैं अपना पवित्र कर्तव्य मानता हूँ उससे मैं विचलित नहीं होऊँगा। मैं अपने लोगों के न्यायोचित हितों के साथ विश्वासघात नहीं करूंगा।"[17] इधर गांधी के लगातार प्रयासों और आग्रह के बाद सवर्ण हिन्दुओ द्वारा अस्पृश्यों से सही व्यवहार करने का नया दौर प्रारंभ हो गया।

Anusandhanvallari
Vol 2026, No.1
ISSN 2229-3388

इस संदर्भ में पंडित जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं "पूरे देश में मंदिरों को अछूतों के लिए खोला जा रहा है। ऐसा लगता है कि हिंदू समाज में उत्साह की एक जादुई लहर दौड़ गई हैं और अस्पृश्यता अपने अंतिम चरण में है। यरवदा जेल में बैठा वह अदना सा आदमी कैसा जादूगर है और वह लोगों के दिलों के तारों को छेड़ने वाली डोर को खींचना कितनी अच्छी तरह से जानता है।"[18] 21 सितंबर 1932 को अम्बेडकर तत्कालीन प्रमुख नेताओं के साथ गांधी से मिलने पहुंचे परंतु यह मुलाकात किसी सकारात्मक नतीजे पर नहीं पहुंची। अब डॉ अम्बेडकर पर निरंतर दबाव बढ़ता जा रहा था क्योंकि करोड़ों देशवासियों की श्रद्धा महात्मा गांधी के जीवन से जुड़ी हुई थी।

भारतीय प्रेस ने उन्हें (अम्बेडकर को) देशद्रोही तक की संज्ञा दे दी और उनकी मांगों को राष्ट्रीय हितों के लिए घातक करार दिया।[19] इस प्रकार अब समझौते का एक और मार्ग खुला गया। डॉ अम्बेडकर पृथक निर्वाचन मण्डल को छोड़ने की बात पर सहमत तो हो गए परन्तु जनसंख्या के अनुपात में आरक्षित सीटों की मांग पर अडिग रहे। अंत में दलितों को 148 सीटें देकर कुल आरक्षित सीटों की संख्या को तय किया गया। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट किया गया कि केंद्रीय विधानसभा में हिंदु की 18 प्रतिशत सीटें भी दलितों को दी जाएगी। 24 सितंबर 1932 को दलित वर्ग के नेताओं और सर्वण हिंदू नेताओं के बीच समझौते पर आखिरकार हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते पर प्रमुख दलित नेता के रूप में डॉ अम्बेडकर और हिंदू नेता के रूप मे पं० मदन मोहन मालवीय ने हस्ताक्षर किये। इस समझौते के अंतर्गत 71 आरक्षित सीटों को बढ़ाकर 148 कर दिया गया।

पूना समझौता के अन्तर्गत दलित वर्ग को मिली सीटें [20]

प्रांत	आरक्षित सीटें
मद्रास	30
बम्बई	15
बंगाल	30
संयुक्त प्रांत	20
पंजाब	8
बिहार व उड़ीसा	18
मध्य प्रांत	20
असम	7
कुल योग	148

यह समझौता भारतीय इतिहास में "पूना पैक्ट" (24 सितंबर 1932) के नाम से जाना जाता है परंतु गांधी इसे स्वयं यरवदा समझौता कहना पसंद करते थे।[21]

पूना पैक्ट के निष्कर्ष के बाद समझौते की प्रति तुरंत ब्रिटिश कैबिनेट और भारत के वायसराय को भेज दी गई और बम्बई प्रेसीडेंसी के गवर्नर के सचिव को भी सौंप दी गई। महात्मा गांधी नें अपना उपवास लगभग 200 शिष्यों और कवि रवींद्रनाथ टैगोर, सरोजनी नायडू, सरदार पटेल और स्वरूप रानी नेहरू के मध्य शाम को तोड़ा। पूना पैक्ट कई मायनों में आधुनिक भारतीय इतिहास की निर्णायक घटनाओं में से एक था। यह भारत के दलित वर्गों के लिए उतना हीं महत्वपूर्ण था जितना लखनऊ समझौता का मुसलमानों के लिए है। इस समझौते के बाद ही भारतीय राष्ट्रीय नेतृत्व ने राजनीतिक प्रतिनिधित्व के साथ—साथ सरकारी सेवाओं में आरक्षण आदि जैसे अन्य विशेषाधिकार दलित वर्गों के लिए सुनिश्चित करता है।

संदर्भ

1. बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाडमय खण्ड 15 नई दिल्ली : डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार 1993 - 2019, पृ. 247।
2. चंद्र, विपिन, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990, पृ. 116।
3. शर्मा, राम विलास, गांधी, अम्बेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2008, पृ. 553।
4. बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाडमय , खण्ड 7, नई दिल्ली : डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार 1993 - 2019, पृ. 240।
5. चहल एस. के. दलित पैट्रानाइज्ड : इंडियन नैशनल कॉग्रेस एंड दी अनटचेबल्स ऑफ इंडिया, 1921 - 1947, नई दिल्ली : शुभी प्रकाशन 2002 पृ. 25 - 41।
6. कुबेर डब्ल्यू. एन. आधुनिक भारत के निर्माता : भीमराव अम्बेडकर, नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 2019, पृ. 1।
7. मून, वसंत (स.) डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचेस खण्ड 9 बम्बई पृ. 118।
8. भारत सरकार द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी खण्ड 17 नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय 1958 - 1994, पृ. 518 - 519।
9. बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर : सम्पूर्ण वाडमय खण्ड 5 नई दिल्ली : डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार 1993 - 2019, पृ. 43।
10. देसाई, महादेव गांधी जी इन इंग्लैंड पृ. 134।
11. भारत सरकार द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी खण्ड 42 नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय 1958 - 1994, पृ. 54।
12. भारत सरकार द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी खण्ड 58 नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय 1958 - 1994, पृ. 63।

13. बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचेस, खण्ड 9 नई दिल्ली : डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार 1993 - 2019, पृ. 333।
14. रिफॉर्म ऑफिस. रिफॉर्म ऑफिस फाइल सं. 174/32 1932।
15. भारत सरकार द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी खण्ड 50 नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय 1958 - 1994, पृ. 384 - 385।
16. बॉम्बे क्रोनिकल 15 सितम्बर 1932।
17. बाबा साहब डॉ अम्बेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचेस. खण्ड 9 नई दिल्लीः डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार 1993 - 2019 पृ. 316।
18. दी सिलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेह : खण्ड 5 नई दिल्लीः जवाहरलाल नेह : मेमोरियल फंड 2003, पृ. 407-408।
19. दी हिन्दुस्तान टाइम्स 3 अप्रैल 1932।
20. बाबा साहब डॉ अम्बेडकर : राइटिंग्स एंड स्पीचेस खण्ड 9 नई दिल्लीः डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार 1993 - 2019, पृ. 341।
21. भारत सरकार द कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी. खण्ड 51 नई दिल्ली : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय 1958 - 1994, पृ. 463 - 465।